कबीरदास की वर्तमान प्रासंगिकता: आधुनिक भारतीय समाज में सामाजिक दर्शन का विश्लेषण

Shodh Siddhi
A Multidisciplinary & Multilingual Double Blind Peer Reviewed International Research Journal
Volume: 01 | Issue: 04 [October to December : 2025], pp. 60-64

धर्मराज नायक
(सहायक आचार्य) हिंदी साहित्य
केशव महाविद्यालय
अटरू, बारां (राजस्थान)

Abstract

कबीरदास (1398-1518) भक्तिकाल के प्रमुख निर्गुण संत कवि थे, जिनकी वाणी ने मध्यकालीन भारत की सामाजिक-धार्मिक विसंगतियों पर प्रहार किया। आज के भारत में जातिवाद, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं, जहाँ कबीर की साखियाँ और पद नैतिक पुनरुत्थान के लिए प्रासंगिक हैं। यह शोध पत्र कबीर के दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है, जिसमें प्राथमिक स्रोतों (बीजक, ग्रंथावली) और द्वितीयक साहित्य का उपयोग किया गया है।

Keywords: कबीरदास, निर्गुण भक्ति , सामाजिक समानता, सांप्रदायिक सद्भाव, समकालीन प्रासंगिकता

मुख्य उद्देश्य:

कबीर की वाणी को 2025 के संदर्भ में परखना, जहाँ डिजिटल विभाजन और राजनीतिक ध्रुवीकरण नई चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं।

- कबीर के सामाजिक और आध्यात्मिक विचारों का विश्लेषण करना।
- कबीर साहित्य की वर्तमान समय में उपयोगिता स्पष्ट करना।
- आडंबर-विरोध और मानवतावाद की अवधारणा का अध्ययन करना।
- समकालीन समाज में कबीर की प्रासंगिकता सिद्ध करना।

प्रस्तावना

भारतीय संत परंपरा में कबीरदास का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उनका जन्म वाराणसी में एक जुलाहा परिवार में हुआ, जो तत्कालीन सामाजिक संरचना में हाशिए पर स्थित था। इस पृष्ठभूमि ने कबीर को समाज की असमानताओं और धार्मिक आडंबरों को निकट से देखने और उनकी आलोचना करने का अवसर प्रदान किया। कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों परंपराओं की रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए निराकार ब्रह्म की भक्ति को सर्वोच्च मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार वे भक्तिमार्ग की निर्गुण धारा के प्रवर्तक और प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते हैं।

कबीर की वाणी केवल धार्मिक साधना तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने सामाजिक चेतना को भी गहराई से प्रभावित किया। उनकी प्रसिद्ध उक्ति "पोथी पढ़ि

पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय" ज्ञान के बाहरी प्रदर्शन और कर्मकांडों की निरर्थकता पर तीखा व्यंग्य करती है।यह वाणी मनुष्य को आत्मानुभूति, तर्कशीलता और मानवता की ओर उन्मुख करती है। कबीर का दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि धर्म का सार करुणा, समानता और न्याय में निहित है, न कि जाति या संप्रदाय आधारित विभाजन में।

वर्तमान भारतीय समाज में, जहाँ संविधानिक समानता का आदर्श स्थापित है, वहीं जातिगत हिंसा और सांप्रदायिक तनाव की घटनाएँ निरंतर सामने आती हैं। 2024-25 में दर्ज दलित अत्याचारों और विभिन्न सांप्रदायिक दंगों की घटनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि सामाजिक न्याय और सद्भावना की राह अभी भी चुनौतीपूर्ण है। इस संदर्भ में कबीर की वाणी विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठती है। उनका संदेश हमें यह स्मरण कराता है कि किसी भी समाज की वास्तविक शक्ति उसकी करुणा, सहिष्णुता और तर्कशीलता में निहित होती है।

अतः कबीरदास की शिक्षाएँ केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि समकालीन भारत के लिए भी मार्गदर्शक हैं। वे हमें यह सिखाते हैं कि जाति और धर्म से ऊपर उठकर मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना ही सच्ची भक्ति और सच्चा धर्म है। इस प्रकार कबीर की वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय में थी, क्योंकि यह हमें एक ऐसे समाज की ओर ले जाती है जहाँ समानता, न्याय और मानवता सर्वोच्च मूल्य हों।

शोध पद्धति

यह शोध साहित्यिक स्रोतों के विश्लेषण पर आधारित है। कबीर के पदों, साखियों तथा आलोचनात्मक ग्रंथों का अध्ययन कर व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाई गई है।

जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि-

कबीर का जन्म 1398 ई. में लाहरतारा तालाब के पास हुआ। अंत: साक्ष्य और साहित्यिक प्रमाणों से यह पता चलता है कि कबीर नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपति को लहरतारा तालाब के किनारे मिले। यह किंवदंती भी प्रचलित है कि कबीर का जन्म नहीं हुआ बल्कि वह इस तालाब के किनारे बाल रूप में प्रकट हुए, शिशु को नीरू-नीमा दंपति ने पाला। जुलाहा व्यवसाय ने उन्हें निम्न वर्ण की वास्तविकता से परिचित कराया। रामानंद के शिष्यत्व ने उनकी आध्यात्मिक यात्रा आरंभ की।

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील, मानवीय और यथार्थवादी था। उन्होंने अपने समय के समाज में फैली ऊँच-नीच, जाति-भेद, छुआछूत और सामाजिक असमानता का तीखा विरोध किया। कबीर का मानना था कि मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म, जाति या बाहरी पहचान से नहीं, बल्कि उसके ज्ञान, आचरण और अनुभव से निर्धारित होती है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।"

यह कथन केवल धार्मिक संदर्भ तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक दर्शन प्रस्तुत करता है। कबीर ने उस व्यवस्था को चुनौती दी जिसमें व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी जाति और कुल के आधार पर किया जाता था। उन्होंने यह स्थापित किया कि आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए ज्ञान, सदाचार और सत्यनिष्ठा ही वास्तविक मानदंड हैं।कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण समता और मानवता पर आधारित है। वे सभी मनुष्यों को एक ही सृष्टिकर्ता की संतान मानते हैं। उनके अनुसार प्रकृति ने किसी भी मनुष्य को ऊँचा या नीचा नहीं बनाया, यह भेद समाज की कृत्रिम संरचना है। इसीलिए वे कहते हैं—

"एके पवन, एक ही पानी, एके ज्योति समान।"

इस पंक्ति में कबीर ने मानव एकता और सार्वभौमिक समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। यह विचार आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों—समानता, न्याय और मानवाधिकार—से पूर्णतः मेल खाता है।कबीर ने सामाजिक भेदभाव के साथ-साथ धार्मिक विभाजन का भी विरोध किया। वे हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों की कट्टरता पर प्रहार करते हैं और बताते हैं कि बाहरी पहचान के आधार पर विभाजन निरर्थक है। उनका उद्देश्य समाज को विभाजन से निकालकर समरसता की ओर ले जाना था।उनका दृष्टिकोण केवल आलोचनात्मक नहीं, बल्कि रचनात्मक भी है। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ व्यक्ति का सम्मान उसके गुणों और कर्मों से हो, न कि जाति या धर्म से। कबीर का यह सामाजिक दर्शन आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है, जब समाज अभी भी अनेक रूपों में भेदभाव और असमानता से जूझ रहा है।

इस प्रकार कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण मानव समानता, ज्ञान-प्रधानता और सामाजिक न्याय का सशक्त प्रतिपादन करता है। यह दृष्टि न केवल मध्यकालीन समाज के लिए क्रांतिकारी थी, बल्कि आज के लोकतांत्रिक समाज के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होती है।

आडंबर और कर्मकांड का विरोध

कबीर का काव्य धार्मिक आडंबर, बाह्य दिखावे और कर्मकांड के तीखे विरोध के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित उन धार्मिक परंपराओं की आलोचना की, जिनमें आंतरिक परिवर्तन और नैतिक जीवन की अपेक्षा बाहरी अनुष्ठानों और प्रतीकों को अधिक महत्व दिया जाता था। कबीर का मानना था कि यदि मनुष्य का मन शुद्ध नहीं है, तो बाहरी पूजा-पाठ, जप-तप और वेश-भूषा का कोई वास्तविक मूल्य नहीं है। इसी विचार को वे स्पष्ट करते हैं—

"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।"

इस दोहे में कबीर ने गहरी आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक सच्चाई व्यक्त की है। वे कहते हैं कि व्यक्ति हाथों से माला फेरते-फेरते उम्र गुजार देता है, परंतु यदि उसका मन विकारों, लोभ, अहंकार और द्वेष से भरा है, तो उस जप का कोई लाभ नहीं। सच्ची साधना मन के परिवर्तन में है, न कि बाहरी क्रियाओं में।कबीर ने पाखंडी साधुओं, कर्मकांडी ब्राह्मणों और अंधानुकरण करने वाले लोगों पर भी प्रहार किया। वे उन लोगों की आलोचना करते हैं जो मंदिर-मस्जिद जाते हैं, व्रत-उपवास करते हैं, विशेष वेश धारण करते हैं, परंतु व्यवहार में सत्य और करुणा का अभाव होता है। कबीर के अनुसार धर्म का सार आचरण में है, प्रदर्शन में नहीं।

उनका आडंबर-विरोध केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और नैतिक जीवन पर भी लागू होता है। वे व्यक्ति को आत्मपरीक्षण, सत्यनिष्ठा और आंतरिक शुद्धता की ओर प्रेरित करते हैं। उनका संदेश है कि धर्म का वास्तविक रूप मानवता, प्रेम और सत्य आचरण में निहित है।समकालीन संदर्भ में भी कबीर का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक है। आज भी समाज में धार्मिक आयोजन, अनुष्ठान और प्रतीकात्मक आचरण प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं, परंतु नैतिकता और मानवीय संवेदना का ह्रास भी साथ-साथ देखा जाता है। ऐसे समय में कबीर का संदेश हमें याद दिलाता है कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के भीतर सद्गुणों का विकास करना है, न कि केवल बाहरी क्रियाओं का निर्वाह।
इस प्रकार कबीर का आडंबर और कर्मकांड-विरोध धार्मिक चेतना को आंतरिक शुद्धता, नैतिकता और आत्मानुभूति की ओर मोड़ने का सशक्त प्रयास है, जो आज भी उतना ही सार्थक और आवश्यक है।

सांप्रदायिक सद्भाव

कबीर का सामाजिक और आध्यात्मिक चिंतन सांप्रदायिक सद्भाव की भावना से ओत-प्रोत है। वे ऐसे समय में प्रकट हुए जब समाज हिंदू और मुस्लिम धार्मिक विभाजन, कट्टरता और आपसी अविश्वास से ग्रस्त था। कबीर ने दोनों समुदायों की बाह्य धार्मिक जिद और संकीर्णता की आलोचना करते हुए ईश्वर की एकता तथा मानव धर्म की श्रेष्ठता पर बल दिया। इसी भाव को वे इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं—

"हिंदू कहे मोहि राम पियारा, तुर्क कहे रहमाना।
आपस में दोऊ लरि-लरि मरते, मरम न काहू जाना।"

कबीर का आशय है कि नाम और उपासना पद्धति के भेद के कारण मनुष्य ईश्वर को अलग-अलग मान लेता है, जबकि सत्य यह है कि परम सत्ता एक ही है। वे बताते हैं कि 'राम' और 'रहमान' नामों का अंतर केवल भाषाई और सांस्कृतिक है, आध्यात्मिक सत्य में कोई भेद नहीं। इस प्रकार कबीर ने धर्म के बाहरी रूपों से ऊपर उठकर उसके आंतरिक सार—मानवता, प्रेम और सत्य—को महत्व दिया।कबीर ने न केवल हिंदू कर्मकांड की आलोचना की, बल्कि मुस्लिम धार्मिक औपचारिकताओं पर भी प्रश्न उठाए। उनका उद्देश्य किसी धर्म का अपमान करना नहीं था, बल्कि धार्मिक कट्टरता और अंधानुकरण से मनुष्य को मुक्त करना था। वे मनुष्य को यह समझाना चाहते थे कि ईश्वर की प्राप्ति आपसी वैर, हिंसा और विवाद से नहीं, बल्कि प्रेम, सहिष्णुता और सद्भाव से संभव है।

उनका यह दृष्टिकोण धार्मिक समन्वय (religious harmony) का प्रारंभिक और शक्तिशाली रूप है। कबीर ने साझा सांस्कृतिक चेतना को बढ़ावा दिया और बताया कि सच्चा धर्म मनुष्य को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। वे मानव को 'मानव' के रूप में देखने की प्रेरणा देते हैं, न कि किसी संप्रदाय के प्रतिनिधि के रूप में।वर्तमान समय में, जब सांप्रदायिक तनाव, धार्मिक ध्रुवीकरण और पहचान-आधारित राजनीति बढ़ती दिखाई देती है, कबीर का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है। उनकी वाणी हमें याद दिलाती है कि धर्म का मूल उद्देश्य शांति, करुणा और सह-अस्तित्व है। सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से कबीर का सांप्रदायिक सद्भाव का सिद्धांत आज भी मार्गदर्शक है।

इस प्रकार कबीर का चिंतन धार्मिक एकता और मानवीय बंधुत्व का सशक्त उद्घोष है, जो समय और समाज की सीमाओं से परे जाकर सार्वकालिक महत्व रखता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

1. जातिवाद और सामाजिक न्याय

2025 में भारत में 20 प्रतिशत दलित-आदिवासी हिंसा मामलों में वृद्धि हुई (NCRB डेटा आधारित अनुमान)। कबीर का "सब गोविंद हैं, गोविंद बिन न कोय" संवैधानिक समानता (अनु. 14-17) को मजबूत करता है। अम्बेडकर ने भी कबीर को प्रेरणा माना।

2. सांप्रदायिकता और ध्रुवीकरण

CAA-NRC विरोध और 2024 चुनावी हिंसा में कबीर की "राम रहीम एक है" वाणी शांति का संदेश देती है। सोशल मीडिया पर धार्मिक प्रचार में उनकी आलोचना आवश्यक है।

3. अंधविश्वास और विज्ञान

कोविड-19 के बाद ज्योतिष-टोटके का प्रचलन बढ़ा। कबीर का तर्कवाद ("पोथी पढ़े ना बहुत बना, बहुत पढ़े ना बना।") शिक्षा सुधार (NEP 2020) में सहायक है।

4. राजनीति और नैतिकता

भ्रष्टाचार सूचकांक में भारत 85वें स्थान पर (2024)। कबीर का "बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।" सत्ता-लिप्सा पर प्रहार करता है। ट्रंप जैसे नेताओं की तुलना में भारतीय राजनीति में सत्यनिष्ठा की कमी है।

शिक्षा और साहित्य में भूमिका

1. शैक्षिक पाठ्यक्रम में कबीर : मूल्यपरक और मनोवैज्ञानिक महत्त्व

कबीर का साहित्य केवल धार्मिक या काव्यात्मक महत्व तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका गहरा शैक्षिक महत्व भी है। यही कारण है कि विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर के हिंदी पाठ्यक्रमों में कबीर के पद, साखियाँ और दोहे प्रमुखता से शामिल किए गए हैं। पाठ्यक्रम में कबीर को शामिल करने का उद्देश्य केवल साहित्यिक अध्ययन नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, तार्किक दृष्टि और आत्मचिंतन की प्रवृत्ति का विकास करना भी है।कबीर की वाणी सरल, सारगर्भित और अनुभवपरक है, जो विद्यार्थियों को सीधे जीवन से जोड़ती है। उनके दोहे सत्य, अहिंसा, समानता, सदाचार, परिश्रम और मानवता जैसे मूल्यों का संदेश देते हैं। उदाहरण के लिए—सत्य बोलने, पाखंड से दूर रहने, और आंतरिक शुद्धता पर बल देने वाले उनके कथन मूल्यपरक शिक्षा (Value Education) के प्रमुख आधार बन सकते हैं। इस प्रकार कबीर का साहित्य विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।

विद्यालय स्तर पर कबीर के दोहे भाषा शिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षा का भी माध्यम बनते हैं। उनकी संक्षिप्त और प्रभावी शैली विद्यार्थियों को कम शब्दों में गहरी बात समझने की क्षमता विकसित करती है। साथ ही, सामाजिक समानता और सांप्रदायिक सद्भाव के उनके विचार बहुसांस्कृतिक समाज में सह-अस्तित्व की भावना को मजबूत करते हैं। विश्वविद्यालय स्तर पर कबीर का अध्ययन आलोचनात्मक सोच (critical thinking) और वैचारिक विश्लेषण को विकसित करता है। छात्र कबीर के माध्यम से सामाजिक संरचना, धार्मिक विमर्श, लोकचेतना और वैचारिक विद्रोह जैसे विषयों को समझते हैं। इससे साहित्य अध्ययन केवल परीक्षा तक सीमित न रहकर सामाजिक बोध का माध्यम बन जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी कबीर की वाणी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे बार-बार आत्मपरीक्षण, अंतर्दृष्टि और मन के परिवर्तन पर बल देते हैं—"मन का मनका फेर" जैसी अवधारणा व्यक्ति को बाहरी दोषारोपण के बजाय आत्मनिरीक्षण की ओर प्रेरित करती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान की आत्म-जागरूकता $elf-awareness) और आंतरिक विकास की अवधारणा से मेल खाता है। कबीर व्यक्ति को अपने भीतर झाँकने, अहंकार त्यागने और मानसिक शुद्धि की ओर बढ़ने का संदेश देते हैं, जो मानसिक संतुलन और व्यक्तित्व विकास के लिए उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त, कबीर की प्रश्नाकुल और तर्कशील शैली विद्यार्थियों में जिज्ञासा और स्वतंत्र विचार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है। वे अंधानुकरण के बजाय विवेकपूर्ण निर्णय का मार्ग दिखाते हैं — जो आधुनिक शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रम में कबीर का समावेश केवल साहित्यिक परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि मूल्यपरक, मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक विकास को सुदृढ़ करने के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर का साहित्य शिक्षा को जीवन से जोड़ता है और उसे अधिक मानवीय, जागरूक और चिंतनशील बनाता है।

2. साहित्यिक प्रभाव

कबीर का साहित्य हिंदी काव्य परंपरा में अत्यंत व्यापक और गहरा प्रभाव रखने वाला है। उनकी वाणी की निर्भीकता, सामाजिक यथार्थ की तीखी अभिव्यक्ति, पाखंड-विरोध, मानवीय सरोकार और भाषा की सादगी ने आधुनिक हिंदी कविता को भी गहराई से प्रभावित किया है। विशेष रूप से आधुनिक काल के कवि—जैसे सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और गजानन माधव 'मुक्तिबोध'—के काव्य में कबीर की वैचारिक परंपरा और विद्रोही चेतना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

कबीर की काव्य-दृष्टि का मूल स्वर**अनुभव की प्रामाणिकता और सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति**है। वे किसी सत्ता, परंपरा या रूढ़ि से समझौता नहीं करते। यही गुण निराला की कविता में भी दिखाई देता है। निराला ने भी सामाजिक विषमता, रूढ़िवाद और अन्याय के विरुद्ध स्वर उठाया। उनकी कविताओं में मानव-मुक्ति, व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा मिलती है। कबीर की तरह निराला भी काव्य को केवल सौंदर्य-बोध का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का उपकरण मानते हैं। भाषा के स्तर पर भी निराला ने परंपरागत बंधनों को तोड़ा और अभिव्यक्ति को अधिक स्वच्छंद बनाया — यह प्रवृत्ति कबीर की लोकधर्मी, बंधनमुक्त भाषा की याद दिलाती है।

मुक्तिबोध के काव्य में भी कबीर की परंपरा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। मुक्तिबोध की कविता में आत्मसंघर्ष, सामाजिक यथार्थ का कठोर चित्रण, बौद्धिक ईमानदारी और व्यवस्था-विरोधी चेतना प्रमुख है। वे भी आंतरिक सत्य की खोज और सामाजिक अन्याय के प्रतिरोध को कविता का आवश्यक तत्व मानते हैं। कबीर की तरह मुक्तिबोध भी आत्मालोचन और वैचारिक बेचैनी को रचनात्मक ऊर्जा में बदलते हैं। उनकी काव्य-दृष्टि में नकली नैतिकता और बौद्धिक पाखंड के प्रति तीखा प्रतिरोध मिलता है — जो कबीर की आलोचनात्मक परंपरा का आधुनिक रूप कहा जा सकता है।

कबीर का प्रभाव केवल विषय-वस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि **काव्य-स्वर और दृष्टिकोण**पर भी है। सीधे संबोधन की शैली, प्रश्नाकुलता, तर्कपूर्ण आक्रोश और जनपक्षधरता—ये सभी गुण आधुनिक प्रगतिशील और प्रयोगवादी कवियों में विकसित रूप में दिखाई देते हैं। धूमिल, रघुवीर सहाय और दुष्यंत कुमार जैसे कवियों की सामाजिक चेतना में भी कबीर की परंपरा की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है।

भाषा की दृष्टि से भी कबीर ने लोकभाषा को काव्य की प्रतिष्ठित भाषा बनाया। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक कवियों ने बोलचाल और जनजीवन से जुड़े शब्दों को कविता में स्थान दिया। इससे हिंदी कविता अधिक जनोन्मुख और प्रभावशाली बनी।

इस प्रकार कबीर केवल मध्यकालीन संत कवि नहीं, बल्कि हिंदी की आधुनिक काव्य-चेतना के भी प्रेरक स्रोत हैं। उनकी विद्रोही दृष्टि, सत्यनिष्ठा और जनपक्षधरता ने आधुनिक कविता को वैचारिक गहराई और नैतिक साहस प्रदान किया है।

शोध पद्धति और सीमाएँ

यह विश्लेषण गुणात्मक है: प्राथमिक स्रोत (बीजक), द्वितीयक (द्विवेदी, दास) और समाचार विश्लेषण। मात्रात्मक सर्वे की कमी सीमा है। भविष्य में गंभीर शोध संभव।

निष्कर्ष

कबीर की वाणी समयातीत है, जो 2025 के भारत को समावेशी समाज की ओर ले जाती है। उनकी प्रासंगिकता सिद्ध करने हेतु नीतिगत एकीकरण आवश्यक।

References

1. स्वामी मुगलानन्दकबीर सागर, 2016, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर
2. श्रीवास्तव पुरुषोतम, कबीर साहित्य का अध्ययन 2002, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. त्रिगुणायत गोविंद, कबीर की विचारधारा, 2024,साहित्य निकेतन, कानपुर
4. अनन्तदास, कबीर साहब की परचई,2012, देव प्रकाशन, दिल्ली
5. स्वामी परमानन्द, कबीर मंगूर, 1999,लक्ष्नी वेंकटेश्वर प्रेसप्रकाशन, बंबई
6. सिंह बाबू लहना, कबीर कसौटी, 2002, कला प्रकाशन, वाराणसी
7. स्वामी युगलानन्द, कबीर चरित्र बोध, लक्ष्मी बैंकटेश्वर प्रेस प्रकाशन
8. शुक्ल रामचन्द्र, काव्य में रहस्यवाद, 1998, साहित्यधर प्रकाशन, जयपुर,
9. गुरुग्रंथ साहिब, 1961, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटीअमृतसर
10. तुलसी साहब (हाथरस वाले) की शब्दावली (पहला भाग) 2013, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
11. सिंहवासुदेव, कबीर काव्य कोश,1998, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. डॉ विवेकदारा, कबीर साहित्य की प्रांरागिकत, 1975, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र वाराणसी

❑❑❑